जेनेरिक दवाओं की बाध्यता पर उठते सवाल

हाल ही में प्रधानमंत्री की चिकित्सकों को पर्चे पर दवाओं के जेनेरिक नाम लिखने की बाध्यता की घोषणा ने बहुत से प्रश्न खड़े कर दिए हैं। अगर यह घोषणा अभिनीत हो जाती है, तो चिकित्सकों को दवाओं के ट्रेडमार्क नाम की जगह रासायनि कनाम लिखना होगा। अगर इसे सही प्रकार से लागू किया जा सके, तो सस्ती दवाओं का बोलबाला हो जाएगा।

❖ क्या जेनेरिक दवाएं समान गुणवत्ता रखती हैं ?

भारत में जेनेरिक दवाओं की गुणवत्ता पर संदेह होता है। अगर विदेशों में देखें, तो अमेरिका और यूरोपियन यूनियन ने अन्वेषक दवाओं की तरह ही जेनेरिक दवाओं के लिए बायोइक्विलेंस परीक्षण (BE) अनिवार्य कर रखा है। इससे जेनेरिक दवाइयाँ भी उपचारात्मक दृष्टि से उतनी ही प्रभावशाली सिद्ध होती हैं। अगर कोई दवा बीई परीक्षण पास कर लेती है, तो उसे अन्वेषक दवा के स्थान पर बाजार में लाया जा सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन और मेडेसिन साइंस फ्रंटियर भी अपने कार्यक्रमों के लिए जेनेरिक दवाएं ही खरीदते हैं।

अभी तक भारत में उन्हीं जेनेरिक दवाओं का बीई परीक्षण अनिवार्य था, जिन्हें अन्वेषक दवाओं के आने के चार वर्ष के भीतर अपनी दवा को स्वीकृति दिलवानी होती थी। परंतु अगर निर्माता को कोई जल्दी न हो, तो वह आराम से इसे पाँचवे वर्ष में बिना बीई परीक्षण के बाज़ार में ला सकता था। दवा-निर्माता इस प्रावधान का फायदा उठाते थे और अधिकतर जेनेरिक दवाएं बिना बीई परीक्षण के ही लाई जाती थीं। 3 अप्रैल 2017, से स्वास्थ्य मंत्रालय ने अत्याधिक घुलनशील दवाओं का बीई परीक्षण अनिवार्य कर दिया है। यह स्वागतयोग्य है।

अब प्रश्न यह है कि 3 अप्रैल से पहले से ही जो दवाएं बाज़ार में उपलब्ध हैं, क्या उनका बीई परीक्षण हुआ है ? अब सरकार को चाहिए कि वह ऐसा कानूनी तरीका ढूंढे, जिससे 3 अप्रैल से पहले आई हुई जेनेरिक दवाओं के लिए यह सिद्ध हो सके कि वे अन्वेषक दवाओं के बराबर गुणवत्ता रखने वाली हैं या नहीं ?

कम-से-कम सरकार यह तो कर ही सकती है कि वह कंपनियों पर ऐसी दवाओं के सैल्फ-सर्टिफिकेशन की अनिवार्यता कर दे। दवा-निर्माता कंपनियां पैकेट पर बीई परीक्षण का सत्यापन करें तथा परीक्षण आई डी नंबर डालें।

हालांकि, सफल बीई परीक्षण के बाद भी दवा कई कारणों से अप्रभावशाली हो सकती है। अत्यधिक गर्मी या आर्द्रता वाले वातावरण में रहने पर दवाओं का असर खत्म हो जाता है। अधिकतर सरकारी अस्पतालोंं में इन बातों का ध्यान नहीं रखा जाता और वहाँ दवाओं के नाम पर बस खानापूर्ति होती है।

❖ भारत में दवाओं की गुणवत्ता -

हाल ही के सरकारी सर्वेक्षण से यह सत्य उजागर होता है कि सरकारी साधनों से दी जाने वाली दवाओं में से 10% से अधिक दवाएं स्तरीय नहीं हैं। ऐसी दवाएं मरीजों के जीवन के साथ खिलवाड़ ही करती हैं। कुछ अन्य सर्वेक्षणों से पता चलता है कि सेना के डिपो में आने वाली दवाओं (जिन्हें सैन्य अधिकारियों व कर्मियों को दिया जाता है) में से 32% से अधिक निम्न स्तर की हैं। इन चैंकाने वाले तथ्यों के साथ अब सरकार को अपने जेनेरिक दवाओं की बाध्यता के लक्ष्य को सोच-समझकर लागू करना चाहिए। दरअसल, इस समस्या का समाधान अधिक कानून बनाने में नहीं, वरन् उपभोक्ताओं को अधिक जानकार बनाने में है। दवा-नियमन की जानकारियों को लोगों की पहुँच में रखा जाना चाहिए। यहाँ भी एक मुश्किल है। भारत में प्रत्येक राज्य और केंद्र शासित प्रदेश के अलग-अलग नियमाक हैं। इस प्रकार के कुल 36 नियामक हैं। ये नियामक समय-समय पर दवा विक्रेताओं से नमूने लेकर जाँच करते हैं। इन परीक्षण के तीन डाटा सैट तैयार किए जाते हैं, जिन्हें जनता के लिए उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इससे जनता उन निर्माताओं की दवाएं खरीदने से बचेगी, जिनका निम्न स्तरीय दवाएं बनाने का रिकॉर्ड रहा है।

सरकार को दवा-नियामकों को एकीकृत करके एक राष्ट्रीय डाटाबेस तैयार करना चाहिए। हर नागरिक की पहुँच इस तक होनी चाहिए। सरकार के 'डिजीटल इंडिया' का लक्ष्य भी तो प्रत्येक नागरिक को शक्ति संपन्न बनाना है। उन्हें निम्नस्तरीय दवाओं से बचाने का यही एक रास्ता है।

'द हिंदू' में प्रकाशित दिनेश एस ठाकुर और प्रशांत रेड्डी टी. के लेख पर आधारित।